JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय जीवन की कला परम्पराएं

डॉ.गुलाबधर
सहायक आचार्य
प्रभारी चित्रकला विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य
विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ0 प्र0)

भारत में हमेशा स्वदेशी (देशज या स्थानीय) ज्ञान का भंडार रहा है। जो एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तांतरण (स्थानांतरित) होता रहा है। प्रत्येक पीढी में कलाकारो ने उपलब्ध सामग्री और तकनीकी से सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियो का निर्माण किया है।असंख्य विद्धानो ने इन कला रूपो को लघुकला उपयोगिता कला, लोक, जनजातिय कला, जन साधारण कला, सस्कांर कला, शिल्प और इसी तरह के विभिन्न नाम दिये है। हम जानते है कि ये कला अति प्राचीन कला (स्मरणातीत) से अस्तित्व मे है। पूर्व एतिहासिक कला से भित्ति चित्र और सिंन्धु काल से मिट्टी के बर्तनों टेराकोटा कांस्य हाथी दांत की कलाकृति के उत्कृष्ठ उदाहरण हम देख सकते है। प्रारम्भिक इतिहास और उसके बाद के समय के दौरान हमे हर जगह कलाकारो के समुदाय के संन्दर्भ में (निशान) मिलते है।उन्होंने बर्तन और कपडे, आभूषण और अनुष्ठान या मन्नत की मूर्तियो का सृजन किया है उन्होंने अपनी दिवारों और को सजाया और कलात्मक कार्य अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करनें के लिए किए । इसके साथ ही स्थानीय बाजारों मे अपने कलाकृतियो की आपूर्ति भी की । उनकी रचनाओ मे स्वभाविक (प्राकृतिक) सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति है।इनमे प्रतिकात्मकता रूपांकन का विशेष उपयोग, सामाग्रियो रंग और बनाने की विधियों का विशिष्ट उपयोग लोककला के निर्माण मे किया जाता है। लोक कला और शिल्प के बीच एक पतली रेखा है। इन दोनो मे रचनात्मकता अंत: प्रेरणा (स्वाभाविक), आवश्यकताएं और सौन्दर्य बोध शामिल है।[1]

आज भी कई क्षेत्रो मे हमे ऐसी कलाकृतियां देखने को मिलती हैं। उन्नसवीं और बीसवीं शताब्दी मे भारत और पश्चिम (यूरोप) मे एक नया परिप्रेक्ष्य आधुनिक कलाकारो के मध्य उत्पन्न हुआ । जब उन्होने अपनी रचनात्मक गतिविधियो के लिए अपने आस- पास की लोक कला (पारम्परिक कला) को प्रेरणा के स्रोत के रूप मे स्वीकार किया भारत मे स्वतंत्रता के बाद हस्त कला उद्योग का पुनुरूद्धार हुआ । यह व्यवसायिक उत्पादन के लिए भी संगठित हो गया। इस कला ने एक विशिष्ट पहचान प्राप्त की । राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशो के गठन के साथ उनमें से प्रत्येक ने अपने संबधित राज्य के विक्रय केंद्र(एंपोरियॉ) में अपनी विभिन्न अद्वितीय कलाओं और उत्पादों का प्रदर्शन किया हैं । भारत कला और शिल्प परम्पराऍ भारत के पॉच हजार सालों से अधिक की मूर्ति 'वास्तविक' विरासत के इतिहास को प्रदर्शित करती है । हालांकि हम कई को जानते हैं । जैसे मिथिला या विहार की मधुबनी पेंटिंग, राजस्थान की पाबूजी की पड़ पेंटिग, नाथद्वार की पिछवई, मध्यप्रदेश को गोड़ और सांवरा पेंटिग, उड़िसा और बंगाल की पटचित्र आदि चित्रकला (लोककला) के कुछ उदाहरण है ।[2]

मिथिला कला सबसे प्रसिद्ध समकालिन चित्रकला रूपो मे एक है।जिसका नामकरण मिथिला प्रदेश के नाम पर आधारित है। मिथिला का प्राचीन नाम विदेह था और जिला मधुबनी के नाम इसे मधुबनी चित्रकला भी कहा जाता है। यह एक 'व्यापक रूप से' मान्यता प्राप्त प्रसिद्ध लोक कला परम्परा है। यह माना जाता है कि सदियो से मान्यता प्राप्त है। वार्ली यह भारत के सबसे पुरानी कला रूपो मे से एक है। इसकी शुरूआत भारत के पश्चिमी घाट के वर्ली जनजातीयों द्वारा की गई है। 2500 ईसा पूर्व भारत के पश्चिमी घाट से वर्ली जनजाती द्वारा यह कला उत्पन्न है। यह भारत की सबसे पुरानी कला रूपो मे एक है।

भारत की जीवतं कला परम्पराओ का प्रारम्भिक कला के स्वरूपो की एक ऐसी अनादिकालीन परम्परा रही है। जिसे शहरी जीवन से दूर जंगलो पर्वतो और गॉव के क्षेत्रो मे रहने वालो लोगो के बीच मे विभिन्न कारणो के साथ अमल मे लाया जाता रहा है।अभी तक प्रारम्भिक कलाओ का अध्ययन करने से जिसका नाम उसी स्थान या खदानो के नाम पर रखा गया है। जिन्होने खुद सौ वर्षो तक भारतीय उप महाद्वीप के विभिन्न भागो पर शासन किया। परन्तु आम लोगो की इसमे क्या भुमिका रही, क्या ऐसी कोई कला नहीं थी जिसका अस्तित्व उसके आस पास रहा हो राज दरबारो या आश्रयदाताओं के यहॉ रहने वाले कलाकार लोग कहां से आते थे। शहरो मे आने से पहले वे लोग क्या किया करते थे। आज भी वे अनजान कलाकार लोग कौन है जो दूर पर्वतो,गांवो और ग्रामीण क्षेत्रों मे रहते हुए हस्त कलाओं से सम्बघिंत वस्तुओं को बनाया करते हैं और जो कभी किसी स्कूल या डिजाइन इंस्टीट्यूट मे नहीं गये हैं।[3]

कला परम्पराओं का हमारा देश सदैव से ही स्थानीय ज्ञान का भण्डार रहा है। जो एक पीढी से दूसरी पीढी मे लिए हस्तांतरित होता रहा है। कला के इन स्वरूपो का लघुतर कला,उपयोगी कला, लोक कला, जनजातीय कला ,सामान्य जन कला, संस्कारी कला, हस्त कला आदि नाम दिये हैं।हम जानते है कि कला के इस स्वरूप आनादि काल से अस्तित्व मे है प्रागैतिहासिक काल के गुफा चित्रों मे मिट्टी के बर्तनो की कलाकृतियों मे , पक्की मिट्टी की बनी वस्तुओं मे कांसे के बर्तनो मे और हाथी दांत की वस्तुओ मे इन कलाओं के उदाहरणों को देखा जा सकता है।

भारतीय चित्रकला की एक पारम्परिक शैली है जिसकी उत्पप्ति कर्नाटक के मैसूर शहर मे हुई थी। चित्रो की विशेषता सोने की पत्ती का उपयोग, जीवंत रंग और जटिल विवरण हैं।मैसूर पेंटिग आम तौर पर हिन्दू देवताओ कों चित्रित करती है।और प्राकृतिक रंगो और रंगो का उपयोग करके कागज या रेशम पर बनाई जाती है। मैसूर चित्रकला भारतीय चित्रकला की एक पांरम्परिक शैली है जिसकी उत्पप्ति कर्नाटक के मैसूर से है केवल सजावटी टुकडो से अधिक पेंटिग दशको मे भक्ति और विनम्रता की भावनाओ को प्रेंरित करने के लिए बनाई गई है।पौभा पेंटिग नेपाल राज्य की एक पांरम्पिक कला है।जिसे भारत मे भी कई सस्कृतियों ने अपनाया है। चित्रो की विशेषता उनके चमकीले जीवन रंगो का उपयोग, जटिल विवरण और बौद्व देवताओ और आध्यात्मिक प्रतिको का चित्रण है।पौभा पेंटिग आम तौर पर प्राकृतिक रंगो और सोने की पत्ती का उपयोग करके कपास या रेशम से बनाई जाती है। काली घाट पेंटिग भारतीय चित्रकला की एक पारम्परिक शैली है जो पश्चिम बंगाल के कोलकाता के काली घाट क्षेत्र मे विकसित हुई चित्रो की विशेषता उनके चमकीले एवं जीवंत रंगो का उपयोग सरल और भोली शैली और रोजमर्रा की जिदंगी और सास्कृतिक परम्पराओं का चित्रण है काली घाट पेंटिग मे अक्सर हिंन्दू देवताओं और पौराणिक दृश्यों के साथ साथ सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओ को भी दिखाया गया है। पारम्परिक रूप से प्राकृतिक रंगों और रंगो का उपयोग कागज या कैनवास पर बनाई जाती है।

परिवारिक जीवन तथा लोक जीवन, खजुराहों की भित्तियों पर अनेक ऐसी आकृतियॉ भी उत्कीर्ण हैं जो उस समय के पारिवारिक तथा लोक जीवन से सम्बधित विभिन्न क्रिया – कलापों को प्रस्तुत करती हैं । एक स्थान पर एक स्त्री अपने शिशु को दुलार रही हैं । एक अन्य आकृति में परदेश गये पति का पत्र मिलने पर नायिका चित्र रचना करने बैठी हैं। पार्श्वनाथ मंदिर में एक शिल्प में अंकित स्त्री –पुरूष किसी विषय पर वाद –विवाद कर रहे हैं। [5]

लोक जीवन के भी अनेक पक्षों का अंकन यहॉ के मूर्ति –शिल्प में हुआ है। कन्दरियॉ महादेव तथा लक्ष्मण मंदिर में लड़कियों को नृत्य की शिक्षा देने का भी अंकन हैं ।एक अन्य विषय पाठशाला भी है जिसका अंकन यहॉ उक्त दोंनो ही मंदिरों में हुआ हैं। नृत्य संगीत मण्डली आदि के भी सुन्दर दृश्य अंकित है। लोक जीवन के अन्य विषयों में मल्ययुद्ध भी दिखया गया है। एक अग्न शिला खण्ड पर कई व्यक्तियों को धान कूटते चित्रित किया गया है। एक अन्य प्रस्तर खण्ड पर छह श्रमिक एक बड़े शिला खण्ड को बॉस पर लटका कर कन्धो के बल ढ़ोकर ले जाते हुए दिखाये गये है। कहीं चित्राकार्य किसी पट्ट पर चित्राकंन करते उत्कीर्ण है। उनके आगे तथा पीछे अनेक शिल्प खड़े हैं एक अन्य शिल्प में आश्रम (अथवा वन)मे रहने वालो का जीवन चित्रित किया गया है।और दूध दूहना , पशु पालना , तथा जंगल से लकड़ी काट कर लाना आदि कार्यों को दिखाया गया है।

खजुराहो के सभी हिन्दू तथा जैन मन्दिरो की शैली एक है। इनमे अन्तर केवल दो बातो का है एक तो मन्दिरो मे मूर्तिर्यो के विषयो का और दूसरो मे इनकी बाहरी दिवारो पर अंकित श्रृंगार पूर्ण दृश्य नहीं है। हिन्दू मन्दिरों मे हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तिया तथा श्रृंगार पूर्ण दृश्यों की भरमार है।

भारत की कला परम्पराएं और हस्त कला परम्पराये इस देश की स्पष्ट विरासत को दर्शाती हैं। जिसका इतिहास कई हजारो से भी अधिक पुराना है। भारतीय लोकप्रिय परंपरायें विभिन्न समुदाय के लोगो मे सृष्टि वर्णन का प्रतिनिधित्व करती हैं। पिढोरा चित्रकला गुजरात मे पंचमहल क्षेत्र के राठवा भीलो और पडोसी राज्य मध्यप्रदेश मे झाबुआ मे स्थित इन चित्रो को घरो की दिवारो पर विशेष अवसर या उत्सवो पर चित्रित किया जाता है। ये बडे भित्ति चित्र हैं । जहां पक्तियो मे कई भव्य रंगीन देवताओ को घोडे पर सवार दर्शाया जाता है। घोडा सवार देवताओं की पंकितयां ,राठावों का प्रतिनिधित्व करती हैं सबसे उपर घुडसवार देवमाओं का खंड स्वर्गीय निकायो और पौराणिक प्राणियो की दुनिया का प्रतिनिधित्व करता है । जहां पिठोरो की शादी की बारात जिसमे गौण देवता , राजाओ , देवियो ,एक आदर्श किसान , घरेलू जानवरो इत्यादि को पृथ्वी पर दर्शाया जाता है।[6]

डोकरा कास्टिंग लोकप्रिय मूर्तिकला परम्पराओ मे , कांस्य की ढलाई या सारे पर्दू तकनीक से बनाई गई डोकरा या धातु की मूर्तियां छत्तीसगढ के बस्तर , मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सो , उडिसा और पंश्चिम बंगाल के मिदनापुर के सबसे प्रमुख धातु शिल्पो मे से एक है। इसमे पिघला हुआ मोम विधि के माध्यम से कांस्य की ढलाई शामिल है। बस्तर के धातु कारीगरो को गढ़वा कहा जाता है। लोकप्रिय शब्दावली मे गढ़वा शब्द का अर्थ है आकार देना और बनाने की क्रिया शायद इसी कारण कलाकारो को गढ़वा नाम दिया गया हैं परम्परागत रूप से गढ़वा कारीगर ग्रामीणो के दैनिक उपयोग की बर्तनो की आपूर्ति के अलावा आभूषण, स्थानीय रूप से प्रतिष्ठित देवताओ की मूर्ति और मन्नत के चढ़ावा मे सांप, हाथी , घोडे , अनुष्ठान के बर्तन आदि का निर्माण करते हैं इसके बाद समय के साथ समुदाय मे बर्तन आदि का निर्माण करते हैं।इसके बाद समय के साथ समुदाय मे बर्तन और पारम्परिक आभूषणो की मांग में कमी आने के बाद , इन शिल्पकारो मे नये रूपो (गैर पारंपरिक) और कई सजावटी वस्तुओं का निर्माण शुरू किया। डोकरा की ढलाई एक विस्तृत प्रक्रिया है। नदी के किनारे की काली मिट्टी को चावल की भूसी के साथ मिलाकर पानी से गुथा जाता है। मुख्य आकृति(कोर फीगर) या मोल्ड को इसी से बनाया जाता है। सूखने के बाद इस पर गोबर मे मिट्टी मिलाकर इसे दूसरी परत से ढक दिया जाता है। साल के पेड से एकत्रित राल को तब तक मिट्टी के बर्तन मे गर्म किया जाता है जब तक कि वह तरल न हो जाये , इसमे कुछ सरसो का तेल भी मिलाकर उबला जाता है। उबलते तरल को एक कपड़े के माध्यम से छान लिया जाता है और पानी के उ़पर एक धातु के मे बर्तन मे इकट्ठा कर रखा जाता है । परिणाम स्वरूप राल जम जाता है लेकिन नरम और मुलायम रहता है फिर इसे छोटे- छोटे टुकडो मे अलग कर लिया जाता है। कोयले के धीमी आंच पर इन्हे थोडा गर्म किया जाता है। और फिर उत्कृष्ठ धागो या कुडंल मे फैलाया जाता है। ऐसे धागे पट्टियां बनाने के लिये एक साथ जुड जाती है सूखी मिट्टी के आकार के उपर इन राल के पहियो या कुंडल को मढ़ा या जोड़ा जाता है और फिर सभी सजावटी विवरण , जैसे- आंख, नाक आदि को आकृति के साथ बनाया जाता है । ये परम्परागत कला आगे बढाने के लिये अग्रसर और संवेदनशील हूँ। पारम्परिक भारतीया लोक कला एक शब्द है जो उन लोगो की विद्यायों को संदर्भित करता है जो पेशेवर कलाकार नही हैं। जैसे कि चित्रकार ,मूर्तिकार और अक्सर शामिल किये जाते है। हमारी भारतीया कला और संस्कृति मे लोक शब्द का सार और सरलता पर जोर देता है। उत्पादन के लिए किसी औपचारिक योग्यता की आवश्यकता नही होती है। सरलता पर जोर देता हैं। लोककला का आवश्यकता नही होती है और कार्य की शैली उस संस्कृति को दर्शाती है जहां से उसकी उत्पत्ति होती है लोककलाएँ कलात्मक परम्पपराये जो सामान्य सन्दर्भ मे उत्पन्न हुई और सिखाई जाने पर पीढीयों तक चली गयी थी, यही हमारी भारतीय कला और संस्कृति का ह्रदय है।[7] भारतीय कला और संस्कृति हमेशा संस्कृतियों और परम्पराओ का मिश्रण रही है। यह दुनियां की उन कुछ स्थानो मे से एक है जिसने अपनी विरासत और जीवन संस्कृति के माध्यम से सदियो पुरानी लोककला को संरक्षित किया है। यह कला सबसे मौलिक काम है क्यों कि यह लोगों की आत्मा से पैदा हुई है।

भारतीय लोककला परम्पराएँ लुप्त होती कला बन गई हैं। भारत और बाहर कला सग्रहालयों की नई पीढ़ियों के बीच इन लोककलाओ के बारे मे जागरूकता की कमी ने इस दुखद स्थिति को जन्म दिया है।जहॉ से लोककलाएँ धीरे–धीरे लुप्त हो रही है । कम कमाई की संभावना के कारण युवा कलाकार इस पेंरो को नही अपना रहे हैं कला परंपरा को जीवित रखने के लिये हमे उन लागो की मदद करके इन परपंराओ को जीवित और प्रासांगिक बनाए रखने के लिये रचनात्मक तरीके की आवश्यकता है। भारतीय जीवन नि:सन्देह कलात्मक कारीगरी का खजाना , शाश्वत मूल्य रखता है।

सन्दर्भ ग्रंथ–

1. प्रो. मंजुला चतुर्वेदी – भारतीय लोककला के अभिप्राय, पृ.सं.59–64
2. डॉ. शैलेन्द्र कुमार – उत्तर भारतीय पोथी चित्रण, पृ.सं.52–55
3. डॉ. सुनिल सक्सेना – कांगणा की चित्रकला मे श्रृंगार, पृ.सं.15–21
4. डॉ. दिनेश चन्द्र गुप्ता – भारत की चित्रकला, पृ.सं.10–13
5. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल – भारतीय मूर्तिकला परिचय, पृ.सं. 63–64
6. डॉ. श्री मति मधु श्रीवास्तव – बुन्देलखण्ड की लोकचित्रकला, पृ.सं. 45–50
7. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल – भारतीय मूर्तिकला परिचय, पृ.सं.81–87